

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 4 अध्याय 4: सती का देहत्याग

14 September 2026

🙏 पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।



अपने स्वामी के चरण-कमलों में पूर्णतः लीन होकर सती योग की साधना से अपने प्राणों को समेटती हैं, और उनका शुद्ध शरीर एक पावन आन्तरिक अग्नि में प्रज्वलित हो उठता है — एक आत्मा जो उस भगवान् से विमुख रहने के बजाय उन्हीं की ओर लौट रही है जिसका उस घर में तिरस्कार हुआ था।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

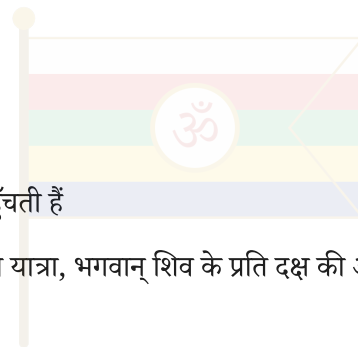
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विजडम में आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं और शिक्षाओं की एक भक्तिपूर्ण यात्रा। पिछले अध्याय में भगवान् शिव ने अपनी पत्नी सती को स्नेहपूर्वक चेतावनी दी थी कि वे अपने पिता दक्ष के महान् यज्ञ में न जाएँ, क्योंकि दक्ष का हृदय उनके प्रति अवमानना से विषाक्त था। यह चतुर्थ अध्याय बताता है कि उस चेतावनी का क्या परिणाम हुआ। अपने परिवार के प्रति स्नेह और अपने पति के प्रति अपने पिता के द्वेष की व्यथा के बीच बँटी हुई, सती शिव की सलाह के विरुद्ध यज्ञ की ओर चल पड़ती हैं — और वहाँ उन्हें ठीक वही घाव मिलता है जिसकी शिव ने भविष्यवाणी की थी। तत्पश्चात् जो घटित होता है वह समस्त शास्त्रों में सबसे गम्भीर तथा मर्मस्पर्शी प्रसंगों में से एक है: समस्त सभा के समक्ष सती द्वारा अपने पिता की निर्भीक भर्त्सना, और उस शरीर को त्याग देने का उनका निर्णय जो उस पुरुष से उत्पन्न हुआ था जिसने उनके आराध्य भगवान् की निन्दा की। यह अध्याय पवित्र की निन्दा सुनने की असह्य पीड़ा के विषय में है, और उस भक्ति की पवित्रता के विषय में है जो भगवान् से विलग रहकर जीने के बजाय शरीर को त्याग देना श्रेयस्कर मानती है।

अध्याय की जानकारी

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 4 (चतुर्थ स्कन्ध)
- अध्याय: 4 (चतुर्थ अध्याय)
- अध्याय का शीर्षक: सती का देहत्याग
- मुख्य वक्ता: महर्षि मैत्रेय, विदुर को अपने उपदेश की निरन्तरता में
- मुख्य श्रोता: विदुर
- मुख्य स्थल: दक्ष का महान् यज्ञस्थल, जहाँ सती कैलास से यात्रा करके पहुँचती हैं
- केन्द्रीय विषय: शिव की चेतावनी के विरुद्ध सती की अपने पिता के यज्ञ की यात्रा, भगवान् शिव के प्रति दक्ष की अवमानना के लिए उनकी भर्त्सना, तथा योगाग्नि से सती का देहत्याग
- मुख्य श्लोक-सीमा: स्कन्ध 4, अध्याय 4, श्लोक 1–34
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण



पिछले अध्याय का सन्दर्भ

अध्याय 3 में, सती अपने पिता दक्ष के घर के भव्य यज्ञ में जाने तथा अपनी माता और बहनों से पुनः मिलने के लिए तरस रही थीं। भगवान् शिव, दक्ष के द्वारा उन पर की गई अवमानना को स्मरण करते हुए, उन्हें प्रेम और स्पष्टता के साथ न जाने की सलाह देते हैं, यह चेतावनी देते हुए कि किसी स्वजन की अवमानना सबसे गहरा घाव है और वहाँ जाने से कोई भला नहीं होगा। वह संवाद वहीं समाप्त होता है जहाँ सती अपने हृदय में उस चेतावनी को मान नहीं पातीं।

चेतावनी के विरुद्ध सती का प्रस्थान

जब शिव मौन हुए, तब सती दुविधा में खड़ी रह गई, अपनी जाने की उत्कंठा तथा अपने स्वामी की अवज्ञा के भय के बीच झूले की भाँति डोलती हुई। अन्ततः, गहरी साँस भरते हुए, शोक और क्रोध से आच्छन्न बुद्धि के साथ, वे उन्हें छोड़कर अपने पितृगृह की ओर चल पड़ीं — उसी भगवान् को पीछे छोड़कर जिन्होंने प्रेमवश उन्हें अपने ही शरीर का आधा भाग दे दिया था।

ततो विनिःश्वस्य सती विहाय तं

शोकेन रोषेण च दूयता हृदा ।

पित्रोर्गात्स्त्रैणविमूढधीर्गृहान्

प्रेम्णात्मनो योऽर्धमदात्सतां प्रियः ॥ ३ ॥

tato viniḥśvasya satī vihāya taṁ śokena roṣeṇa ca dūyatā hṛdā pitror agāt straiṇa-vimūḍha-dhīr gṛhān premṇātmāno yo 'rdham adāt satām priyaḥ

अर्थ: तब, गहरी साँस भरकर, शोक और क्रोध से व्यथित हृदय के साथ, स्त्री-सुलभ भाव से आच्छन्न बुद्धि वाली सती ने उन्हें छोड़ दिया और अपने पितृगृह की ओर चल पड़ीं — उन सन्तों के प्रिय भगवान् को छोड़कर, जिन्होंने प्रेमवश उन्हें अपने शरीर का आधा भाग दे दिया था। (स्कन्ध 4, अध्याय 4, श्लोक 3)

उन्हें जाते देख, शिव के भक्त परिचर — मणिमान्, मद तथा अन्य, यक्षों सहित — उन्हें अकेली यात्रा नहीं करने देना चाहते थे। वृषभों के अधिपति नन्दीश्वर को अपने आगे रखकर, उन्होंने सती को महान् वृषभ पर बिठाया, उनके पालतू सारिका पक्षी, श्वेत छत्र, चँवर तथा राजसी चिह्नों से युक्त करके, और शंख, वेणु तथा दुन्दुभि की ध्वनि के बीच उन्हें दक्ष के यज्ञ की ओर ले चले।



महान् वृषभ नन्दी पर आरूढ़ और भगवान् शिव के भक्त परिचरों द्वारा छत्र, चँवर तथा वाद्यों सहित अनुरक्षित, सती अपने स्वामी की सलाह के विरुद्ध कैलास से अपने पिता के यज्ञ की ओर यात्रा करती हैं (श्लोक 4-5)।

एक शीतल स्वागत

सती यज्ञस्थल पर पहुँचीं, जहाँ चारों ओर वैदिक मन्त्र गूँज रहे थे और वह प्रांगण ब्रह्मर्षियों तथा देवगणों से भरा हुआ था। किन्तु दक्ष के भय से, जिन्होंने शिव का इतना अनादर किया था, वहाँ किसी ने भी उनका स्वागत करने का साहस नहीं किया — किसी ने नहीं, केवल उनकी अपनी बहनों तथा माता को छोड़कर, जिन्होंने प्रेम के अश्रुओं से रूँधे कण्ठ से उन्हें गले लगाया। अपने पिता से स्नेहपूर्ण सम्बोधन न पाकर, सती ने न तो अपनी माता तथा बहनों द्वारा प्रेमपूर्वक दिए गए उपहार या सम्मान का आसन स्वीकार किया, और न ही उनकी कुशल-क्षेम की कोमल पूछताछ का उत्तर दिया। उनके पिता के मौन ने उन्हें सब कुछ बता दिया था।

सती द्वारा अपने पिता की भर्त्सना

तब सती ने वह देखा जिसने उन्हें सबसे गहरे बेधा: यज्ञ की समस्त आहुतियों के भागों में से एक भी उनके स्वामी रुद्र के लिए नहीं रखा गया था। सर्वज्ञ भगवान् के प्रति इस जान-बूझकर की गई अवमानना तथा अपने पिता के प्रत्यक्ष तिरस्कार को देखकर, वे एक धर्मपूर्ण क्रोध से प्रज्वलित हो उठीं जो मानो लोकों को भस्म कर देगा। जो भूतगण दक्ष पर प्रहार करने के लिए आगे बढ़े थे, उन्हें अपनी आज्ञा से रोककर, वे भगवान् शिव के उस शत्रु की ओर मुड़ीं और समस्त सभा के सुनते हुए, शोक और क्रोध से काँपते स्वर में, उनकी भर्त्सना की।



भगवान् शिव के लिए कोई आहुति न रखी देख और अपने पिता के तिरस्कार से आहत होकर, सती समस्त सभा के समक्ष उठ खड़ी होती हैं और परम कल्याणकारी भगवान् के प्रति दक्ष के द्वेष के लिए उनकी भर्त्सना करती हैं (श्लोक 9-15)।

आपके अतिरिक्त कोई भी, उन्होंने घोषित किया, भगवान् शिव के प्रति वैर नहीं रखेगा — वे जो प्रत्येक देहधारी को सबसे प्रिय हैं, जो समस्त प्राणियों के आत्मस्वरूप हैं, और जो किसी के प्रति तनिक भी वैर से रहित हैं।

देव्युवाच

न यस्य लोकेऽस्त्यतिशायनः प्रिय-

स्तथाप्रियो देहभृतां प्रियात्मनः ।

तस्मिन्समस्तात्मनि मुक्तवैरके

ऋते भवन्तं कतमः प्रतीपयेत् ॥ ११ ॥

devy uvāca na yasya loke 'sty atisāyanaḥ priyas tathāpriyo deha-bhṛtām priyātmanaḥ tasmin samastātmani mukta-vairake ṛte bhavantaṁ katamaḥ pratīpayet

अर्थ: देवी ने कहा: जिनके लिए न कोई अधिक प्रिय है और न कोई अधिक अप्रिय — जो समस्त देहधारियों के प्रिय आत्मस्वरूप हैं, जिनमें किसी के प्रति तनिक भी वैर नहीं — उनके प्रति आपके अतिरिक्त कौन वैर-भाव रखेगा? (स्कन्ध 4, अध्याय 4, श्लोक 11)

साधारण जन, उन्होंने कहा, दूसरों के छोटे-छोटे गुणों को भी बढ़ा-चढ़ाकर देखते हैं, जबकि क्षुद्र लोग दोष ढूँढ़ते हैं; किन्तु दक्ष ने तो उनमें भी दोष ढूँढ़ा जो समस्त दोषों से रहित हैं। यह कोई आश्चर्य नहीं कि जो नीच जन शरीर को ही आत्मा मानते हैं वे महान् आत्माओं की निन्दा करें — किन्तु दक्ष का पवित्र-कीर्ति भगवान् शिव से, जिनका नाम ही मुक्ति का साधन है, द्वेष करना क्षमा से परे बात थी।

यद्वयक्षरं नाम गिरेरितं नृणां

सकृत्प्रसङ्गादधमाशु हन्ति तत् ।

पवित्रकीर्तिं तमलङ्घ्यशासनं

भवानहो द्वेष्टि शिवं शिवेतरः ॥ १४ ॥

yad dvy-akṣaraṁ nāma gireritaṁ nṛṇāṁ sakṛt prasaṅgād agham āśu hanti tat pavitra-kīrtiṁ tam alaṅghya-śāsanam bhavān aho dveṣṭi śivam śivetaraḥ

अर्थ: उनका दो अक्षरों वाला नाम “शिव”, मनुष्यों द्वारा एक बार भी, यहाँ तक कि प्रसंगवश भी उच्चारित होने पर, तत्काल उनके पाप को नष्ट कर देता है। फिर भी आप — जो स्वयं अशिव (अमंगल) हैं — उन पवित्र-कीर्ति शिव से द्वेष करते हैं, जिनकी आज्ञा का कोई उल्लंघन नहीं कर सकता! (स्कन्ध 4, अध्याय 4, श्लोक 14)

शरीर त्यागने का संकल्प

जब स्वामी की निन्दा हो रही हो, सती ने आगे कहा, तब जिसमें उसे रोकने की शक्ति न हो उसे कम से कम अपने कान बन्द करके वहाँ से चले जाना चाहिए; और जिसमें शक्ति हो उसे अपने प्राणों की बलि देकर भी उस निन्दक को मौन कर देना चाहिए। जहाँ तक उनका अपना प्रश्न था, वे उस शरीर को अब और नहीं रखेंगी जो उन्होंने ऐसे पुरुष से प्राप्त किया था जिसने भगवान् शिव की निन्दा की — क्योंकि विद्वान् कहते हैं कि जो अनुचित रीति से ग्रहण किया गया हो उसे त्याग देने से ही शुद्धि होती है। उन्हें, उन्होंने कहा, ऐसे पुरुष के साथ अपने सम्बन्ध पर ही लज्जा आती थी; और जब भी उनके स्वामी, विनोद में, उन्हें “दाक्षायणी” — दक्ष की कन्या — कहकर सम्बोधित करते, तब वे हृदय तक बेधी जातीं। उस सम्बन्ध को अब वे सदा के लिए तोड़ देंगी।

यहाँ सती केवल शोक में डूबी हुई नहीं हैं; वे उसी नियम को स्वयं पर लागू कर रही हैं जिसकी उन्होंने अभी घोषणा की थी। उनकी अपनी शिक्षा यह है कि जो कोई धर्म के रक्षक की निन्दा सुनता है और उस निन्दक को स्वयं मौन करने की सामर्थ्य नहीं रखता, उसे या तो उसकी उपस्थिति से हट जाना चाहिए या, ऐसा न कर पाने पर, उस शरीर को त्याग देना चाहिए जिसने वह निन्दा बिना प्रतिकार के सुनी। दक्ष उनके पिता थे — वे उन पर वैसे हाथ नहीं उठाएँगी जैसे किसी अपरिचित पर उठाया जाता। इसलिए वे निन्दकों के लिए स्वयं निर्धारित किए गए उसी दण्ड को दक्ष पर नहीं, अपितु दक्ष से उत्पन्न अपने ही शरीर पर लागू करती हैं। उनकी मृत्यु इस प्रकार न तो निराशा है और न विद्रोह; यह उस सिद्धान्त की सुविचारित, जान-बूझकर की गई पूर्ति है जिसे उन्होंने अभी समस्त सभा के समक्ष घोषित किया था (श्लोक 17-18)।

गोत्रं त्वदीयं भगवान्वृषध्वजो
दाक्षायणीत्याह यदा सुदुर्मानाः ।
व्यपेतनर्मस्मितमाशु तदाऽहं
व्युत्सक्ष्य एतत्कुणपं त्वदङ्गजम् ॥ २३ ॥

gotraṁ tvadīyaṁ bhagavān vṛṣadhvajo dākṣāyaṇīty āha yadā sudurmanāḥ vyapeta-narma-smitam āśu tadā 'haṁ vyutsrakṣya etat kuṇapaṁ tvad-aṅgajam

अर्थ: जब भी वृषभध्वज भगवान् मुझे, विनोद में भी, आपके वंश में उत्पन्न “दाक्षायणी” कहकर सम्बोधित करते हैं, तब मैं सारा हास्य खोकर शोक में डूब जाती हूँ। इसलिए मैं तत्काल आपके शरीर से उत्पन्न इस शव-सदृश देह को त्याग दूँगी। (स्कन्ध 4, अध्याय 4, श्लोक 23)

योग की अग्नि

यज्ञ के मध्य दक्ष से इस प्रकार कहकर, सती भूमि पर बैठ गई, मौन, उत्तर की ओर मुख किए हुए। उन्होंने शुद्धि के लिए जल का आचमन किया, स्वयं को पीत वस्त्र में लपेटा, नेत्र बन्द किए, और शरीर त्यागने की योग-कला की ओर मुड़ीं। स्वयं को स्थिर करके, उन्होंने नाभि पर प्राण तथा अपान वायु को संयुक्त किया, और उदान वायु को हृदय से होते हुए भ्रूमध्य तक ऊपर की ओर खींचा। तब, उस शरीर को त्याग देने की कामना से जिसे उनके स्वामी ने प्रायः प्रेमपूर्वक अपनी गोद में खींचा था — अब अपने पिता के विरुद्ध अप्रसन्नता में समर्पित — उन्होंने गहन एकाग्रता से आन्तरिक अग्नि तथा वायु का आवाहन किया। अपने स्वामी के चरण-कमलों के मधु में पूर्णतः लीन, और कुछ भी न देखती हुई, उनका शरीर, समस्त मलिनता से शुद्ध होकर, उनके ध्यान से उत्पन्न अग्नि में प्रज्वलित हो उठा।

ततः स्वभर्तृश्चरणाम्बुजासवं
जगद्गुरोश्चिन्तयती न चापरम् ।
ददर्श देहो हतकल्मषः सती
सद्यः प्रज्ज्वाल समाधिजाग्निना ॥ २७ ॥

tataḥ sva-bhartuś caraṇāmbujāsavaṁ jagad-guroś cintayatī na cāparam dadarśa deho hata-kalmaṣaḥ satī sadyaḥ prajajvāla samādhijāgninā

अर्थ: तब, अपने पति, जगद्गुरु के चरण-कमलों के अमृत का ही, और किसी वस्तु का नहीं, ध्यान करती हुई सती — जिनका शरीर समस्त मलिनता से मुक्त था — तत्काल अपने गहन ध्यान से उत्पन्न अग्नि में प्रज्वलित हो उठी। (स्कन्ध 4, अध्याय 4, श्लोक 27)



उत्तर की ओर मुख किए भूमि पर बैठी, पीत वस्त्र में लिपटी और अपने स्वामी के चरण-कमलों के ध्यान में लीन, सती योग की अग्नि से अपने प्राणों को समेटती हैं (श्लोक 24-27)।

स्वर्ग तथा पृथ्वी पर हाहाकार

उस अद्भुत घटना पर एक महान् शोक-नाद आकाश तथा पृथ्वी दोनों में समान रूप से उठ खड़ा हुआ: “हाय! देवताओं में परम पूज्य की प्रिया सती ने अपने प्राण त्याग दिए — किसने और किस क्रोध में उन्हें ऐसा करने को उकसाया?”

तत्पश्यतां खे भुवि चाद्भुतं महद्
हाहेति वादः सुमहानजायत ।
हन्त प्रिया दैवतमस्य देवी
जहावसून् केन सती प्रकोपिता ॥ २८ ॥

tat paśyatāṁ khe bhuvi cādbhutaṁ mahad hā hetī vādaḥ sumahān ajāyata hanta priyā daivatamasya devī jahāv asūn kena satī prakopitā

अर्थ: जब सबने उस महान् अद्भुत घटना को देखा, तब आकाश तथा पृथ्वी पर “हाय! हाय!” का एक विशाल नाद उठा: “परम पूज्य भगवान् की प्रिया, देवी सती ने अपने प्राण त्याग दिए! किसने उन्हें इतना कुपित किया?” (स्कन्ध 4, अध्याय 4, श्लोक 28)

समस्त संसार ने प्रजापति दक्ष की ओर घृणा से देखा, जिनकी अवमानना से उनकी अपनी महान् आत्मा वाली कन्या ने वह जीवन त्याग दिया जिसे खोने की वे कभी पात्र न थीं। वे स्थायी अपयश भोगेंगे, लोगों ने कहा — यह शिव-द्वेषी जिसने अपनी ही सन्तान को मृत्यु के लिए उद्यत देख भी उसे नहीं रोका।

पारेचरों का उठ खड़ा होना, और यज्ञ पर छाया अन्धकार

अपनी स्वामिनी को मृत देखकर, सती के परिचर उठे हुए अस्त्रों के साथ दक्ष को मार गिराने के लिए झपटे। किन्तु उस अनुष्ठान में ऋत्विक् ऋषि भृगु ने दक्षिणाग्नि में एक यजुर्वेदीय मन्त्र के साथ आहुतियाँ दीं जो यज्ञ को विध्वंस करने वालों का नाश करने की शक्ति रखता है — और तत्काल हजारों दिव्य प्राणी, जिन्हें ऋभु कहते हैं, जिनका महान् बल सोम अर्थात् चन्द्रमा से प्राप्त होता है, यज्ञकुण्ड से प्रज्वलित होते हुए उठ खड़े हुए। जलती लकड़ियों से सज्जित तथा ब्राह्मण-तेज से देदीप्यमान, उन्होंने शिव के परिचरों तथा यक्षों को चारों दिशाओं में भगा दिया।



जब सती के देहत्याग पर स्वर्ग तथा पृथ्वी में एक महान् शोक-नाद उठता है, तब यज्ञ-प्रांगण उथल-पुथल में डूब जाता है और भगवान् शिव के परिचर तितर-बितर हो जाते हैं —
दक्ष के अभिमानी यज्ञ का एक अन्धकारमय अन्त (श्लोक 28-34)।

इसी के साथ चतुर्थ अध्याय समाप्त होता है — किन्तु जो शोक इसने प्रज्वलित किया है वह अब रुकने वाला नहीं। सती की मृत्यु का समाचार पहले ही कैलास की ओर दौड़ रहा है, जहाँ भगवान् शिव प्रतीक्षा कर रहे हैं, और अगला अध्याय वह तूफान लेकर आएगा।

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

1. पवित्र की निन्दा शुद्ध हृदय के लिए असह्य है। सती जो सहन नहीं कर पाती वह कोई व्यक्तिगत अपमान नहीं, बल्कि भगवान् शिव के प्रति दिखाई गई अवमानना है, जो किसी से वैर नहीं रखते और प्रत्येक देहधारी को प्रिय हैं। जहाँ साधारण जन दूसरों के छोटे-से-छोटे गुण को भी बढ़ा-चढ़ाकर देखने में आनन्द लेते हैं, वहीं दक्ष ने विशेष प्रयास करके उसमें दोष ढूँढ़ा जो सर्वथा दोषरहित प्रसिद्ध हैं — यह प्रमाण है, सती कहती हैं, कि ईर्ष्या मनुष्य को उस वस्तु के प्रति भी अन्धा कर सकती है जिसका सम्पूर्ण संसार आदर करता है। उनका समस्त अस्तित्व उस घर से विमुख हो जाता है जो भगवान् का अनादर करता है — यह इस बात का माप है कि उनका हृदय कितनी पूर्णता से अपने स्वामी का था (श्लोक 11-14)।

2. भगवान् का नाम स्वयं पावन करने वाला है। सती घोषित करती हैं कि दो अक्षरों वाला नाम “शिव”, एक बार भी और प्रसंगवश भी उच्चारित होने पर, पाप को नष्ट कर देता है। शास्त्र बार-बार पवित्र नाम को सबके लिए सुलभ अनुग्रह के रूप में प्रतिष्ठित करता है (श्लोक 14)।

3. भक्ति के लिए कभी भगवान् का अनादर करने वाले से कष्टपूर्ण विलगाव आवश्यक हो सकता है। शिव-द्वेषी से उत्पन्न शरीर का सती द्वारा त्याग एक चरम तथा अद्वितीय कर्म है, जिसका अक्षरशः अनुकरण नहीं करना चाहिए; इसका आध्यात्मिक अर्थ है उस किसी भी वस्तु के साथ तादात्म्य बनाए रखने से उनका इनकार जो भगवान् की निन्दा करती हो (श्लोक 18, 23)।

4. जो अभिमान पवित्र से द्वेष करता है वह अपना ही विनाश लाता है। शिव के प्रति दक्ष की अवमानना उन्हें ऊँचा नहीं उठाती; वह उन्हें स्वर्ग तथा पृथ्वी की घृणा दिलाती है और उनके अपने भव्य यज्ञ के विनाश को गति देती है। भगवान् के भक्तों के प्रति वैर आत्मघाती है (श्लोक 29-30)।

5. भगवान् के चरणों में लीन मन समस्त मलिनता से मुक्त हो जाता है। अपने अन्तिम क्षण में सती अपने स्वामी के चरण-कमलों के अमृत के अतिरिक्त और किसी का ध्यान नहीं करती, और उनका शरीर “समस्त मलिनता से मुक्त” कहा गया है। भगवान् में पूर्णतः स्थिर मन ही सर्वोच्च शुद्धि है (श्लोक 27)।

एक भक्तिपूर्ण चिन्तन

यह एक कठिन तथा पावन अध्याय है, और यह अनुकरण के बजाय श्रद्धा के साथ पढ़े जाने की माँग करता है। सती का कर्म हमें शोक करने या संसार त्यागने की शिक्षा के रूप में नहीं दिया गया; यह एक ऐसी देवी का अद्वितीय कर्म है जिसकी पहचान इतनी पूर्णता से अपने स्वामी में विलीन थी कि वे ऐसा नाम, शरीर, या सम्बन्ध धारण नहीं कर सकती थीं जो उनका अनादर करता हो। जो बात इस दूरी के पार हमसे बात करती है वह है उनके प्रेम की पूर्णता। हममें से अधिकांश अपने हृदय को बाँट देते हैं — थोड़ा भगवान् के लिए, बहुत संसार के लिए, और जब हमारे सामने पवित्र का उपहास होता है तब एक सतर्क मौन। सती ने कुछ भी नहीं छोड़ा। वे हमें, कोमलता और गम्भीरता से, सिखाती हैं कि बिना किसी आरक्षण के भगवान् से प्रेम करने, और भगवान् के अनादर को अपने ही शरीर के घाव के रूप में अनुभव करने का क्या अर्थ हो सकता है। हमें उनके साथ अग्नि में जाने की आवश्यकता नहीं; किन्तु हम स्वयं से पूछ सकते हैं कि क्या हम भी वहाँ सहजता से बैठने से इनकार कर सकते हैं जहाँ भगवान् तथा उनके भक्तों का तिरस्कार होता है, और क्या हमारी अपनी भक्ति में उनकी पूर्णता का कुछ अंश है।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज, उस पवित्र नाम की शक्ति का सम्मान करें जिसे सती ने प्रतिष्ठित किया। कुछ शान्त क्षण निकालें, स्थिर श्वास के साथ बैठें, और धीरे-धीरे भगवान् के नाम का उच्चारण करें — “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय” — प्रत्येक उच्चारण को पिछले से गहरा बैठने दें। और संकल्प करें कि आज, यदि आप भगवान् या भगवान् के भक्तों के विषय में उपहास या अवमानना सुनें, तो न उसमें सम्मिलित होंगे और न ऐसे बैठे रहेंगे मानो कुछ हुआ ही न हो; बल्कि चुपचाप अपने मन को भगवान् के नाम की ओर मोड़ लेंगे। नाम को हृदय में सँजोकर तथा उसके अनादर को स्वीकार न करके, आप एक छोटे से रूप में, सती की भक्ति की पूर्णता के प्रति निष्ठा रखते हैं।

उपसंहार

चतुर्थ स्कन्ध का चतुर्थ अध्याय दक्ष तथा सती की कथा का करुण हृदय है। अपने स्वामी की स्नेहमयी चेतावनी के विरुद्ध, सती अपने पिता के यज्ञ में जाती हैं, केवल वही अवमानना पाने के लिए जिसकी शिव ने भविष्यवाणी की थी — और, सबसे बुरा, अपने स्वामी के लिए आहुति का कोई भाग न रखा देखने के लिए। समस्त एकत्रित संसार के समक्ष वे परम कल्याणकारी भगवान् से द्वेष करने के लिए अपने पिता की भर्त्सना करती हैं, घोषित करती हैं कि उनका दो अक्षरों वाला नाम ही पापियों को पावन कर सकता है, और शिव-द्वेषी से उत्पन्न शरीर को अब और रखने से इनकार करती हैं। अपने मन को पूर्णतः अपने स्वामी के चरण-कमलों में स्थिर करके, वे उस शरीर को योग की अग्नि में त्याग देती हैं, और

एक महान् शोक-नाद स्वर्ग तथा पृथ्वी में गूँज उठता है। दक्ष का अभिमानी यज्ञ, जो अहंकार में आरम्भ हुआ था, अब अपयश तथा उथल-पुथल की छाया में खड़ा है — और समाचार कैलास की ओर दौड़ रहा है। मैत्रेय हमें यहीं छोड़ते हैं, भगवान् शिव के शोक की देहली पर, और आने वाले प्रतिशोध की देहली पर।

श्रीमद्भागवतम् का दिव्य ज्ञान हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति को जागृत करे।

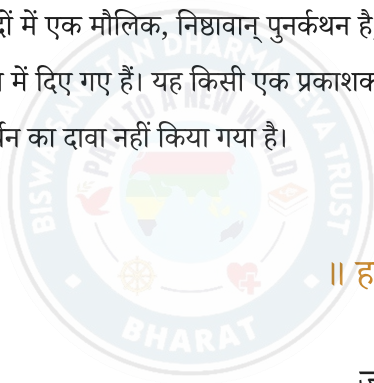
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

सन्दर्भ तथा आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, पूर्ण), चतुर्थ स्कन्ध, चतुर्थ अध्याय, पृ. 364–369।
- शृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज्ञम · बिश्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन तथा अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, निष्ठावान् पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी तथा लिप्यन्तरण में दिखाए गए हैं और उनके अर्थ सारांश के रूप में दिए गए हैं। यह किसी एक प्रकाशक के निरन्तर अनुवाद या टीका का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी भी प्रकाशक द्वारा किसी सम्बद्धता या समर्थन का दावा नहीं किया गया है।



॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-skandh-4-adhyay-4-sati-dehtyag.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम · कल्कि अवतार इंटरनेशनल · बिश्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट